रीतिकालीन काव्य की प्रवृत्तियाँ

सच्चा साहित्यकार किसी लीक पर नहीं चलता है। वह सत्यान्वेषी जहाँ समयुगीन सत्य का अन्वेषण करता है वहीं तत्कालीन परिस्थितियों का विवेचन भी करता है। वह समाजद्रष्टा और समाजस्रष्टा होता है। साहित्य समाज का दर्पण, ज्ञानराशि का संचितकोश और भाव का भण्डार होता है। यही कारण है कि जहाँ वह विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है वहीं साहित्यकार की मनःस्थितियों, प्रवृत्तियों एवं अनुभूतियों का भी प्रतिनिधित्व करता है। रीतिकालीन काव्य- प्रवृत्तियाँ पर्याप्त अंशों तक उपर्युक्त तथ्यों पर आधारित है। रीतिकालीन काव्य की निम्नलिखित मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं—

(1) <u>शृंगारिकता</u> :— इस प्रवृत्ति की महत्ता इसी से आँकी जा सकती है कि इसी प्रवृत्ति की व्यापकता के आधार पर <u>आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र</u> ने इस काल को शृंगारकाल कहना उचित समझा है। शृंगारिकता की प्रवृत्ति रीतिकवियों की कविता का प्राण है। शृंगार रस के लिए नायक- नायिका का आलम्बन ग्रहण किया गया है। इस युग में एक-से-एक सुन्दरी नायिकाओं की परिकल्पना की गई है। इस काल में शृंगारजन्य विभिन्न मानसिक एवं शारीरिक भावों- अनुभावों, केलि- क्रीड़ाओं इत्यादि का सजीव चित्रण मिलता है। कहीं- कहीं नारी- सौन्दर्य एवं प्रणय दृश्यों के चित्रांकन में अश्लीलता दीख पड़ती है। बढ़ा- चढ़ाकर खास तौर से परकीया नायिका को ही शृंगार का आलम्बन बनाया गया। नायक स्वपत्नी के होते हुए भी प्रेयसी से प्रेम कर सकता था और रातभर परकीया नायिका के

साथ सहवास- क्रिया में रत होकर प्रातःकाल उस केलि- क्रीड़ाओं के चिह्नों के साथ तन्द्रिल आँखें लिए अपनी पत्नी के पास निर्लज्जता के साथ खड़ा हो सकता है। साथ ही प्रेम के स्वच्छ, सुन्दर एवं आकर्षक दृश्यों का भी चित्रण दृष्टिगत होता है—

बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय।
सौंह करे भौंहनि हँसे, दैन कहे नटि जाय॥

इसी प्रकार विप्रलंभ शृंगार के वर्णन में भी रीतिकालीन साहित्य का अपना विशिष्ट स्थान है।

(२) आचार्यत्व या रीति-निरूपण :— रीतिकाल के सन्दर्भ में प्रायः लोग आचार्यत्व की चर्चा करते हैं। इस काल के आचार्यों ने संस्कृत काव्यशास्त्रों एवं फारसी काव्यशास्त्रों के आधार पर रीति-निरूपक ग्रन्थों की सर्जना की। फलस्वरूप नायक-नायिका-भेद वर्णन, ऋतु-वर्णन, प्रेम की विभिन्न दशाओं का वर्णन, भाव-अनुभाव का वर्णन इन्होंने सुविधानुसार ढंग से किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के विचारानुसार इस काल के आचार्य सही माने में पूर्ण आचार्य नहीं थे, बल्कि आचार्यों की परिपाटी की नकल करने वाले कवि थे। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी स्वीकार किया है कि इन्होंने रीति-ग्रन्थों एवं काव्य-रचनाओं की खिचड़ी तो बनायी किन्तु वह उतनी स्वादिष्ट और स्वास्थ्यवर्द्धक नहीं हो सकी। वस्तुतः शृंगार रस-वर्णन में ही इनका मन अधिक रमा है, रीति की परिपाटी तो एक बहाना था।

(3) कलापक्ष की प्रधानता :— इस युग की कविता के बाह्य उपकरण — छन्द, अलंकार, शब्द-योजना आदि पर भावों की अपेक्षा अधिक जोर दिया गया। कविगण भावना की सुकुमारता, अनुभूति की सच्चाई एवं कल्पना की मौलिकता पर कतई ध्यान नहीं दिया। उन लोगों ने शब्दों, छन्दों और अलंकारों की पच्चीकारी में ही अपना आत्मगौरव माना। काव्य की

आत्मा 'रस' से हटकर उनकी दृष्टि 'कला' की ओर गयी। इसीलिए डॉ० रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' ने इस काल को 'कलाकाल' नाम देना उपयुक्त समझा।

(4) अलंकरण का प्राधान्य :— शृंगार काल की कविता में अलंकरण का बाहुल्य है। इसी विशेषता को लक्ष्य करके मिश्रबन्धुओं ने इसका नाम 'अलंकृतकाल' रखा था। उनके विचारानुसार इस काल की रचनाओं में अलंकरण की प्रवृत्ति विशेष रूप से पायी जाती है।

भूषण बिनु न बिराजहिं कविता बनिता मित।

घनानन्द के अनुसार इस काल के काव्यों में भिन्न-भिन्न अलंकारों का खुलकर प्रयोग किया गया है। साथ ही अलंकारों के द्वारा ही कविता-कामिनी का शृंगार किया गया है। आचार्य केशव, मतिराम, बिहारी ही नहीं, चिन्तामणि एवं घनानन्द की रचनाओं में भी अलंकारों की योजना दृष्टिगत होती है। उस युग में संस्कृत का अलंकार-सम्प्रदाय बहुत लोकप्रिय था। इसी कारण रीतिकाल का काव्य एक तरह से अलंकारों का समृद्ध कोश बन गया। इस प्रकार निःसन्देह कहा जा सकता है कि इस काल में अलंकारों की प्रधानता रही।

(5) मुक्तक-शैली का प्राधान्य :— इस काल में प्रबन्ध काव्य की अपेक्षा मुक्तक काव्य की रचना में कवियों ने अधिक रुचि दिखाई है। इसका कारण यह है कि रीतिकाल के अधिकांश कवि विलासी राजाओं के आश्रित थे और उनके प्रणय-विलास को उद्दीप्त करने के लिए मुक्तक काव्य की रचना करते थे। साथ ही घनानन्द जैसे कवियों के लिए भी विरह की व्याकुलता को अभिव्यक्त करने हेतु मुक्तक काव्य ही अधिक उपयुक्त था। परन्तु बात में नयी-नयी खोजें हुई हैं, जिसके आधार पर यह प्रमाणित हो चुका है कि रीतिकाल में प्रबन्ध काव्य

भी प्रचुर मात्रा में लिखे गये थे। लेकिन मुक्तक के सामने प्रचार और प्रसिद्धि पाने में ये असमर्थ रहे।

(6) वीरकाव्य की रचना :— यदि आदिकाल को वीर-काव्य का प्रथम उत्थान-युग मान लिया जाय तो रीतिकाल को द्वितीय उत्थान-युग स्वीकार करना पड़ेगा। इस काल के राजाश्रित कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में उनके कई यथार्थ और काल्पनिक वीर चरितों का गुणगान किया। इस दृष्टि से भूषण, सूदन, बोधा, गोरेलाल आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

(7) उद्दीपन रूप में प्रकृति-चित्रण :— रीतिकालीन कविता में प्रकृति का वैसा बिम्बग्राही चित्रण नहीं मिलता जैसा वाल्मीकि-रामायण और कालिदास के काव्य एवं नाटकों में मिलता है। इस युग में प्रकृति के आलम्बन रूप में चित्रण का प्रायः अभाव ही है। रीतिकालीन कवियों ने प्रकृति को मुख्य रूप से उद्दीपन रूप में चित्रित किया है। प्रकृति के उद्दीपन रूप ~~में~~ का चित्रण षट्ऋतु और बारहमासे की पद्धति पर ही मुख्य रूप से मिलता है। अतः इस काव्य में स्वतंत्र प्रकृति निरीक्षण का अभाव रहा।

(8) चित्रात्मकता :— रीतिकाल में शब्दों के माध्यम से चित्र उपस्थित करने का प्रयास देखा जाता है। किन्तु इस काल में समग्र चित्र का निर्माण नहीं हो पाया। 'कुंदन को रंग फीको लगै' जैसी पंक्तियों में खण्ड-चित्र का रूप ही देखा जा सकता है। इसी प्रकार बिहारीलाल की रचनाओं में नारी-सौन्दर्य के कई खण्ड-चित्र दृष्टिगोचर होते हैं।

(9) नीति, सूक्ति और भक्ति की प्रवृत्ति :— रीतिकालीन कवियों में भक्ति के प्रति आस्था कम, विलासिता के प्रति आसक्ति अधिक है।

जहाँ इन्होंने भक्ति का विवेचन भी किया है तो वहाँ भी शृंगार की मादक भावना अनुराग का रंग लिये हुए भक्तों की साधना को भंग करने के लिए तत्पर दिखाई पड़ती है। तभी तो राधा-कृष्ण के सन्दर्भ में अनेक विलासयुक्त मादक चित्रों की परिकल्पना की गई है। इस काल में नीतिपरक रचनायें भी यदा-कदा फुटकल रूप से ही मिलती हैं। इनका ऐतिहासिक महत्त्व तो हो सकता है, साहित्यिक महत्त्व कोई खास नहीं है। लेकिन डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी रीतिकालीन नीतिकाव्य को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। नीतिकाव्य के प्रसिद्ध कवियों में वे वृन्द, बैताल और गिरिधर कविराय का नाम लेते हैं। बिहारीलाल जैसे शृंगारी कवि की रचनाओं में भी नीति, सूक्ति एवं भक्ति के दर्शन होते हैं। यहाँ मैं एक-एक उदाहरण प्रस्तुत कर रहा हूँ —

नीति:— 'नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहि विकास यही काल,
अलि कलि ही सो बंध्यो आगे कौन हवाल।'

सूक्ति:— 'नर की अरु नल नीर की गति एकै करि जोय,
जेतो नीचो ह्वै चलै तेतो ऊँचो होय।'

भक्ति:—
'मेरी भव बाधा हरौ राधा नागरि सोय,
जा तन की झांई परै श्याम हरित दुति होय।'

(10) दृश्य-काव्य :— मूर्तिपूजा-विरोधी प्रवृत्ति के कारण मुसलमान शासकों ने रंगमंच के निर्माण में बाधा डाली। यही कारण है कि रीतिकाल में मौलिक नाट्य-कृतियों का प्रायः अभाव है। फिर भी इस काल में संस्कृत के कुछ नाटकों का अनुवाद किया गया। इस दृष्टि से इसका ऐतिहासिक महत्त्व माना जा सकता है।

(11) नारी-चित्रण :— संस्कृत-साहित्य के अन्तिम चरण में

और भक्तिकाल के पराभव-काल में नारी के प्रति दमित आसक्ति पुनः जाग्रत हो उठी थी। श्रृंगारकाल में आकर उसके लिए अनुकूल वातावरण निर्मित हुआ और नारियों के कोमल एवं प्रेमानुकूल चरितों का सृजन होने लगा। मुग्धा नायिका से लेकर प्रौढ़ा नायिका तक स्त्रियाँ प्रेम की सामग्री बनी और भोग का माध्यम बनी। कुल मिलाकर रीतिकाल की नारी पुरुषों की विलासप्रियता की सामग्री मात्र है। वह गृहणी होती हुई भी वेश्या के समान है।

(१२) ब्रजभाषा का प्राधान्य :— भाषा की दृष्टि से इस काल में ब्रजभाषा ही प्रमुख साहित्यिक भाषा रही। इस काल में ब्रजभाषा का कोश बहुत भर गया और वह बहुत उन्नत हो गई। इस प्रकार श्रृंगारकाल ब्रजभाषा की चरमोन्नति का काल था। ब्रजभाषा में ही कुछ अन्य भाषाओं के शब्दों का मिश्रण दिखाई पड़ जाता है।

(13) छन्द-योजना :— छन्द की दृष्टि से कवित्त, सवैया, दोहा और कहीं-कहीं कुण्डलियाँ अधिक महत्वपूर्ण हैं। सम्पूर्ण रीति-साहित्य प्रायः इन्हीं छन्दों में शब्दांकित है।

(14) शब्द-चयन :— इस काल में शब्द-चयन बहुत ही महत्वपूर्ण रहा। इस काल के कवियों ने ध्वन्यात्मक शब्दों के द्वारा मादक वातावरण का निर्माण करके ध्वनि-सम्प्रदाय के प्रति अपनी जिज्ञासा व्यक्त की है। नायक-नायिका के मिलन के समय आभूषणों की अनुरणात्मक ध्वनियाँ उद्दीपन का कार्य करती हैं। जैसे—

'झाँसरिया झनकैगी चूरी खनकैगी
ए री तनको तन तोरै।' — भिखारीदास

इस प्रकार रीतिकालीन साहित्य की विभिन्न विशेषताएँ हैं। कुछ लोग इसे जीवन का एकांगी

चिंतन मानते हैं और कुछ लोग इसे भाषाडम्बर और अलंकार-योजना से ग्रस्त देखते हैं। किन्तु डॉ० नगेन्द्र रीतिकालीन साहित्य को ही विशुद्ध साहित्य के रूप में देखते हैं क्योंकि इस काल का साहित्य वादों के झमेलों से दूर दिखाई पड़ता है। इससे विशुद्ध आनन्द की प्राप्ति होती है और रस-निष्पत्ति की दृष्टि से इसका विशेष महत्त्व है। मतिराम, बिहारीलाल और घनानन्द जैसे श्रेष्ठ कवियों ने रीतिकालीन साहित्य को साहित्य का उत्कृष्ट रूप प्रदान किया है।

यदि मुझसे पूछा जाय तो मैं तो यही कहूँगा कि रीतिकालीन साहित्य (काव्य) में ताजमहल की कलाबाजी तो दिखलाई (दिखाई) पड़ती है लेकिन मुमताज की आत्मा नहीं।